श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

दक्षिण भारत में नवार्ण मन्त्र की नव दुर्गाओं (१ शैल-पुत्री, २ ब्रह्म-चारिणी, ३ चन्द्र-घण्टा, 3 कूष्माण्डा, ५ स्कन्द-माता, ६ कात्यायनी, ७ काल-रात्रि, ८ महा-गौरी और ६ सिद्धि-दात्री) का पूजा-विधान जिस ढंग से किया जाता है, वह निराला है। नौ माताओं की पूजा दक्षिण भारत में स्थूल-रूप से की जाती है। सूक्ष्म-रूप से जिन नौ माताओं की पूजा होती है, उनमें दीक्षित साधक ही भाग लेते हैं। सूक्ष्म माताओं के शुभ नाम इस प्रकार हैं-

प्रथमा वन - दुर्गा च, द्वितीया शूलिनी मता।

तृतीया जात-वेदा तु, चतुर्थी शान्तिरीरिता॥

पञ्चमी शबरी चेति, ज्वाला-दुर्गा ततः परम्।

सप्तमी लवणा चेति, आसुरी अष्टमी स्मृता॥

नवमी दीप-दुर्गेति, नव-दुर्गाः प्रकीर्तिताः॥

अर्थात् १ वन-दुर्गा, २ शूलिनी-दुर्गा, ३ जात-वेदा-दुर्गा, ४ शान्ति-दुर्गा, ५ शवरी-दुर्गा, ६-चाला-दुर्गा, ७ लवणा-दुर्गा, ८ आसुरी-दुर्गा और ६ दीप-दुर्गा। उक्त नव-दुर्गाओं की पूजा 'नव-रात्र' के दिनों में तथा हर महीने की अष्टमी, नवमी तथा त्रयोदशी के दिनों में विशेष रूप से की जाती है। 'नव-रात्र' के प्रथम तीन दिनों में दक्षिण भारत के सभी साधकों के घरों में दुर्गा की ही पूजा की जाती है। श्रीदुर्गा-सप्तशती का पाठ प्रति-दिन राहु-काल में करना विशेष फल-दायक होता है। अर्क- मङ्गल-गुरु-बुध-शुक्र-शनि-सोम-इन सात दिनों में 'अर्क' अर्थात् रवि के दिन सायं साढ़े चार बजे से छः बजे तक डेढ़ घण्टे का

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

समय, मङ्गल के दिन तीसरे पहर तीन बजे से सायं साढ़े चार बजे तक डेढ़ घण्टे का समय, सोम के दिन सुबह साढ़े सात बजे से नौ वजे तक डेढ़ घण्टे का समय राहु-काल होता है। अतः श्रीदुर्गा-सप्तशती का पाठ रवि के दिन राहु-काल में प्रारम्भ करके सोम के दिन सुबह राहु-काल में ही समाप्त किया जाता है। जो लोग लौकिक और अन्य कार्यों में व्यस्त हैं, वे राहु-काल में प्रति-दिन शत-श्लोकों का पाठ अवश्य करते हैं। रविवार के राहु-काल में नियमित रूप से श्रीदुर्गा-सप्तशती का पारायण साधक लोग अवश्य करते हैं। जैसे कि नेपाल के द्विजों के लिए श्रीदुर्गा-पूजा के दिनों मांस-भक्षण अनिवार्य है, वैसे ही दक्षिण के कुछ द्विजों के घरों में भी पशु-बलि की जाती है और साधक 'महा-प्रसाद' के रूप में उसे ग्रहण करते हैं।

राहु-काल में श्रीदुर्गा-पूजा

दक्षिण-भारत और नेपाल के पूजा-क्रम में अधिक भेद नहीं है। 'राहु-काल' में स्त्रियों द्वारा विशेषतः कन्याओं द्वारा दुर्गा-पूजा करना एवं करवाना अधिकांश शाक्तों के घरों में प्रचलित है।

राहु-काल की स्थूलतः समय-सारिणी

रविवार : ४॥ सायं से ६ सायं। **सोमवार** : प्रातः ७॥ से ६ प्रातः। **मङ्गलवार** : सायं ३ से ४॥ सायं। **बुधवार :** मध्याह्न १२ से १॥ बजे। **गुरुवार :** मध्याह्न १॥ से ३ सायं। **शुक्रवार :** प्रातः १०॥ से मध्याह्न १२। **शनिवार :** प्रातः ६ से १०॥ बजे।

सूर्योदय का समय जहाँ सुबह ६ बजे हो, उसी के अनुसार उपर्युक्त सारिणी दी गई है। प्रयाग के लिए सुबह छः बजकर सात मिनट के हिसाब से 'राहु-काल'

की गणना होती है। अब हम यह देखें कि **'राहु'** और **'दुर्गा'** का क्या सम्बन्ध है। नौ ग्रहों में 'राह' और 'केतु' आसुर-ग्रह के रूप में माने जाते हैं। **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के प्रथम अध्याय में ही है कि मधु-कैटभ नाम के असुर-युग्म से वर प्राप्त करने के बाद **शङ्ख-चक्र-गदा-धारी भगवान् विष्णु** ने उनके जघन-भाग और शिरो-भाग का छेदन किया, तदनन्तर **दुर्गा माता** का अवतार हुआ।

विष्णु-पुराण एवं अन्य-पुराणों में भी दुर्गा माता के प्रभाव का वर्णन हुआ है। उनमें यों बताया गया है कि भगवान् विष्णु ने मोहिनी-रूप धारण करके जब देवों के बीच अमृत वाँटा था, तब 'राहु'-केतु' भी देव-गोष्ठी में शामिल हुए, अमृत भी उन्हें मिल गया। इन्द्र ने उनका सिर काटा तो था, परन्तु अमृत के प्रभाव से दोनों जीवित ही रहे। एक का अमृत गले के नीचे उतर गया, अतः उसका सिर कटा हुआ धड़ ही जीवित रहा, यही 'केतु' है। शाक्तों के अनुसार वही **केतु- 'मुण्ड'**-नाम का असुर है। दूसरे असुर का अमृत गले तक ही था, अतः उसका शिरो-भाग ही जीवित रहा। शिरो-भागवाले उसी असुर का नाम 'राह' है। शाक्तों के अनुसार वही **राहु- 'चण्ड'-नाम** का असुर है। चण्डिका माता के कहे अनुसार काली ने चण्ड-मुण्ड का वध किया, इसीलिए काली का नाम चामुण्डा बन गया। इस बात का विवरण 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के सप्तम अध्याय में मिलता है। उसी काली की 'राहु-काल' में पूजा करने से हमारे अन्दर चण्ड-मुण्ड की जो आसुरी वृत्तियाँ हैं, उनका नाश होता है।

ज्योतिष-शास्त्र में कहा गया है कि-**'शनि-वत् राहुः कुज-वत् केतुः' अर्थात् 'राहु'**- शनि के समान फल देता है तथा केतु- कुज या मङ्गल के समान। केतु अर्थात् कुजकुमार, जो उदीची दिशा का पालक है। राहु- शनि- दक्षिण दिशा का पालक है। 'चण्डी-कवच' में कहा गया है कि **'दक्षिणेऽवतु**

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

वाराही....उदीच्यां पातु कौमारी'-अर्थात् वाराही एवं कौमारी शक्तियों के अनुग्रह से चण्ड-मुण्ड पर विजय मिल जाती है। राहु-काल में इन दोनों शक्तियों (वाराही और कौमारी) का मिलन होता है।

ज्योतिष-शास्त्र तथा प्राणायाम-विज्ञान में इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रति-दिन 'राहु-काल' में जीव का प्रवेश सुषुम्णा नाड़ी में सहज ही हो जाता है। उस समय जो भी मन्त्र जपा जाता है, उसकी सिद्धि हो जाती है। अन्य मन्त्रों की अपेक्षा दुर्गा-मन्त्र की विशेषतः नवार्ण मन्त्र की सिद्धि शीघ्र मिलती है। **शनि, राहु, कुज (मङ्गल) तथा केतु**-ये चारों ग्रह **अग्नि एवं वायु महा-भूतों के द्योतक** हैं। अतः राहु, जो शनि के प्रतिनिधि हैं अर्थात् मृत्यु के द्योतक हैं, उनके चंगुल या पाश से मुक्ति पाने के लिए दुर्गा-मन्त्र का जपना तथा दुर्गा की पूजा करना बड़ा फल-प्रद है। दुर्गा माता के ध्यान-श्लोक में इस वात का भी वर्णन है कि-**'गण्डौ यक्ष-यमौ।**

निशुम्भ-शुम्भ-वध के बाद 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के एकादश अध्याय में मद्र-काली की स्तुति सभी देव-गण करते हैं। यथा

ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।

त्रिशूलं पातु नो भीतः, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते॥

इन भद्र-काली की पूजा- 'राहु-काल' में ही करने का ज्योतिष-शास्त्र में विधान है। उसमें तथा दक्षिणाम्नाय में यह माना गया है कि नैऋति (दक्षिण-पश्चिम) दिशा- 'राहु' की है तथा वायव्य (उत्तर-पश्चिम) दिशा- 'केतु' की है। नैर्ऋति दिशा में खड्ग-धारिणी माता दुर्गा की उपासना करने के लिए उक्त 'राहु-काल' ही उपयुक्त है।

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

यह तो हम सब जानते हैं कि 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का पाठ सभी दिनों में करना. श्रेयस्कर है। यदि किसी अनिवार्य कारण-वश सभी दिनों में पाठ पूरा करने में असमर्थ हों, तो **रविवार के 'राहु-काल' में प्रथमाध्याय-पाठ** का प्रारम्भ करना चाहिए। सौ श्लोकों का पारायण करना पर्याप्त है। 'राहु-काल' में सप्तशती के पाठ का क्रम इस प्रकार है-

रविवार-सायं साढ़े चार बजे से छः बजे तक प्रथमाध्याय के सौ श्लोक **'भगवान् कमलेक्षणः'** तक।

सोमवार-प्रातः साढ़े सात बजे से नौ बजे तक। प्रथम अध्याय के शेष श्लोक, द्वितीय अध्याय एवं तृतीय अध्याय के २८वें श्लोक **'तद्-वधाय तदाऽकरोत्'** तक।

मङ्गलवार-तीसरे पहर तीन बजे से साढ़े चार बजे तक। तृतीय अध्याय के शेष श्लोक, चतुर्थ अध्याय एवं पञ्चम अध्याय के ४२वें श्लोक अर्थात् 'या देवी सर्व-भूतेषु, जाति-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।' तक।

बुधवार-मध्याह्न १२ बजे से डेढ़ बजे तक। पञ्चमाध्याय के शेष श्लोक तथा षष्ठ अध्याय के १३वें श्लोक 'चकाराऽम्बिका ततः' तक।

गुरुवार-मध्याह्न डेढ़ बजे से तीन बजे तक। षष्ठ अध्याय के शेष श्लोक, सप्तम अध्याय एवं अष्टम अध्याय के ६२वें श्लोक 'रक्त-बीजो महाऽसुरः।' तक

शुक्रवार-प्रातः साढ़े दस बजे से वारह बजे तक। अष्टम अध्याय का शेष एक

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

श्लोक, नवम अध्याय, दशम अध्याय तथा एकादश अध्याय के २६वें श्लोक **'ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुर-सूदनम्। त्रिशूलं पातु नो भीतः, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते'** तक।

विशेष- शुक्र के 'राहु-काल' की घड़ी में उपर्युक्त श्लोक की १०८ आवृत्ति करने से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

शनिवार- प्रातः ६ से १०॥ बजे तक। एकादश अध्याय के शेष श्लोक से अन्तिम त्रयोदश अध्याय के अन्तिम श्लोक **'सावर्णिर्भविता मनुः'** तक।

'सूर्य-सावर्णि' के बाद–**१ दक्ष-सावर्णि, २ ब्रह्म-सावर्णि, ३ पौष-सावर्णि (धर्म -सावर्णि), ४ रुद्र सावर्णि, ५ रौच्य-सावर्णि (देव-सावर्णि) तथा ६ इन्द्र-सावर्णि** -इन मनुओं की भी पूजा होती है। इन मनुओं की पूजा से 'अनात्मा' अर्थात् देह में जो आत्म-बुद्धि है, वह नष्ट हो जाती है और साधक की दृष्टि विशाल हो जाती है, वह अपनी संकुचित सीमा से बाहर आकर अपने आदि-पुरुषों के बारे में सोचने लगता है। इसलिए साधक को चिरजीवी मार्कण्डेय महर्षि के शुभ नाम-स्मरण के बाद चौदह मनुओं के शुभ नामों का भी स्मरण करना अनिवार्य है। तभी साधक के विधिवत् प्राणायाम करने के बाद 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के पाठ एवं पूजा के लिए. उसका 'वैवस्वत मन्वन्तरे'-सङ्कल्प सार्थक हो सकता है।

यह तो सभी साधक जानते हैं कि क्षिप्र प्रसाद देनेवाले मन्त्रों में श्रीदुर्गा का मन्त्र सर्वोत्तम है। अतः यह मन्त्र सभी को सिद्ध न हो जाए, इस विचार से ब्रह्मा, वशिष्ठ, विश्वामित्र ऋषियों के शाप भी हुए हैं, जिनके विमोचन के लिए पहले निम्न प्रकार का विनियोग पढ़ना चाहिए-

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

ॐ अस्य श्रीचण्डिकायाः ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शाप-विमोचन-मन्त्रस्य वशिष्ठ-नारद-सम्वाद-साम- वेदाधिपति-ब्रह्मणः ऋषयः। सर्वेश्वर्य-कारिणी श्रीदुर्गा शक्तिः। चरित-त्रयं (ऐं ही क्ली) वीजी ही शक्तिः। त्रिगुणात्म-स्वरूपा-चण्डिका-शाप-विमुक्तौ मम सङ्कल्पित-कार्य-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

उक्त विनियोग के वाद विधिवत् ऋष्यादि-न्यास, कर-षडङ्ग-न्यास, श्रीदुर्गा का ध्यान और उनका मानस-पूजन कर अधिकांश साधक श्रीदुर्गा-सप्तशती के पञ्चम अध्याय के **'देवा ऊचुः-नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः'** से प्रारम्भ करके **'भक्ति-विनम्रमूर्तिभिः'** तक का पाठ करते हैं।

कुछ साधक लोग निम्न १८ मन्त्रों का जप करते हैं। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव'**-इस पद का उच्चारण करना चाहिए। यथा

१ ॐ ह्रीं रौं रेतः-स्वरूपिण्यै मधु-कैटभ-मर्दिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

२ ॐ श्रीं बुद्धि-स्वरूपिण्यै महिषासुर-सैन्य-नाशिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

३ ॐ रं रक्त-स्वरूपिण्यै महिषासुर-मर्दिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

४ ॐ हुं क्षुधा-स्वरूपिण्यै देव-वन्दितायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

५ ॐ छां छाया-स्वरूपिण्यै दूत-सम्यादिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः

विमुक्ता भव।

६ ॐ शं शक्ति-स्वरूपिण्यै धूम्र-लोचन-घातिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

७ ॐ तुं तृषा-स्वरूपिण्यै चण्ड-मुण्ड-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

८ ॐ क्षां शान्ति-स्वरूपिण्यै रक्त-वीज-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

६ ॐ जां जाति-स्वरूपिण्यै निशुम्भ-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१० ॐ लं लजा-स्वरूपिण्यै शुम्भ-वध-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

११ ॐ शं शान्ति-स्वरूपिण्यै देव-स्तुत्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१२ ॐ अं श्रद्धा-स्वरूपिण्यै सकल-फल-दायिन्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१३ ॐ का कान्ति-स्वरूपिण्यै राज्य-वर-प्रदायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भवा

१४ ॐ मां मातृ-स्वरूपिण्यै अनर्गल-महिम-सहितायै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

१५ ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सर्वेश्वर्य-कारिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१६ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्य-कवच-स्वरूपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१७ ॐ क्रीं काल्यै कालि हीं फट् स्वाहायै ऋग्वेद-स्वरूपिण्यै ब्रह्मा-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव।

१८ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-स्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गा-देव्यै नमः।

कुछ साधक निम्नलिखित एक ही मन्त्र का आदि और अन्त में **सात बार जप करके शापोद्धार करते हैं—ॐ हीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिका-देव्यै शाप-नाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।**

अन्य कुछ साधक सप्तशती के १३ : १, १२ : २, ११ : ३, १० : ४, ६ : ५, ८ : ६- इस क्रम से अध्यायों का पाठ करते हैं तथा अन्त में सातवें अध्याय का दो बार पाठ करते हैं। जो भी हो, महर्षि-वन्दना, मनु-पूजा एवं शापोद्धार तथा उत्कीलन प्रायः सभी साधक लोग करते हैं। उत्कीलन के भी कई मन्त्र हैं। सबसे प्रसिद्ध मन्त्र है—**ॐ श्रीं श्रीं क्लीं हूं ओं ऐं क्षोभय मोहय उत्कीलय उत्कीलय ठं ठं।**

शापोद्धार एवं उत्कीलन से आत्मा, जगत् और ब्रह्म का एकीकरण होता है अर्थात् साम्यावस्था का दर्शन मिलता है, वही मुक्ति है।

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

दुर्गा-पूजा के प्रारम्भ में भगवती दुर्गा के वैष्णव-रूप का ध्यान किया जाता है। अतः **'चिदम्बर-संहिता' के अनुसार पहले 'अर्गला' का ही पाठ किया जाता है, बाद में 'कीलक' और अन्त में 'कवच' का। दक्षिण भारत के तमिलनाडु में इसी विधान की महत्ता का प्रदर्शक 'चिदम्बरम्' नामक नगर है, जहाँ शिव-शक्ति के मिलन का दिग्दर्शक श्रीनटराज का दिव्य मन्दिर है। संस्कृत-व्याकरण के अष्टाध्यायी के रचयिता महर्षि पाणिनि एवं दुर्गा देवी के अन्तरङ्ग उपासक महर्षि कात्यायन को इसी क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त हुई, ऐसी किंवदन्ती है।**

उक्त क्रम से कवच द्वारा आत्म-रक्षा कर दुर्गा का आवाहन आदि करना चाहिए। 'कवच' में कुछ साधक लोग 'वन-दुर्गा' को प्रधानता देते हैं। उनके अनुसार 'नौ दुर्गाओं' के नाम इस प्रकार हैं

प्रथमा वन दुर्गेति, द्वितीया शूलिनी मता।

तृतीया जात-वेदा च, चतुर्थी शान्तिरिष्यते॥

पञ्चमी शबरी चैव, षष्ठी ज्वालेति गीयते।

सप्तमी लवणा चेति, अष्टम्यां आसुरी मता॥

नवमी दीप-दुर्गेति, नव-दुर्गाः प्रकीर्तिताः॥

उक्त नव-दुर्गाओं की पूजा का विधान भिन्न-भिन्न है। अतः 'सप्तशती' के साधक इनके स्थान पर भगवती दुर्गा का ही आवाहन-पूजनादि करते हैं। जैसा कि हमने प्रारम्भ में सूचित किया है, मनुओं के विधानानुसार ही दुर्गा-पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार दक्षिण के हों या उत्तर के सभी साधकों को

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

'मन्वादि-काल' का ज्ञान होना आवश्यक है।

सभी शाक्तों को 'काल-पुरुष' की गति तथा अपनी 'प्राण-शक्ति' की गति को जानते हुए कर्म करते रहना चाहिए, परन्तु फल की कामना न हो, यही क्रम मोक्ष-प्रद है।

नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

यही देवों की प्रार्थना है। हाँ, भू-देव शाक्तों की प्रार्थना है। कर्मेन्द्रियों को वश में करने से ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है। कर्मेन्द्रियों को वश में लाने के लिए 'काल' की गति जानना आवश्यक है।

'सौर' सिंह मास एवं 'सौर' कन्या मास—ये दोनों मास दुर्गा माता की पूजा के लिए श्रेष्ठ हैं। अन्य मासों में दिव्य साधक कैसे दुर्गा-पूजा करते हैं यह ज्ञातव्य है। सभी दिनों में रह-काल की घड़ियों में साधना करनी चाहिए। प्राण व अपान की गति रोकते हुए साम्यावस्था में अपनी शक्ति को लाना चाहिए, जिससे देवी के दर्शन सुलभ हों। देवी की गायत्री का १०८ बार जप करने से साधक की शक्ति स्वतः साम्यावस्था में आ जाती है। ध्यान **सिंहासन-गता देवी** का रहे। यथा-

ॐ सिंहस्था शशि-शेखरा मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः,

शङ्ख चक्र-धनुः-शराश्च दधती नेत्रस्त्रिभिः शोभिता।

आमुक्ताङ्गद - हार - कङ्कण-रणत्-काञ्ची-रणन्-नूपुरा,

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

दुर्गा दुर्गति-हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला॥

इस उपासना में षडङ्गों का न्यास मुख्य है। ध्यान के बाद गुरु से आज्ञा लेकर पूजा, जप और होम करना चाहिए। पूजा सदैव दिन में राहु-काल में ही करनी चाहिए। रात के समय राहु-काल नहीं होता। दुर्गा देवी स्वयं अग्नि-स्वरूपा हैं। अतः सूर्य की किरणों के साथ उनको सम्बन्ध 'नित्या' के रूप में जुड़ा हुआ है। हाँ, पशु और वीर साधकों के लिए रात में भी दुर्गा की पूजा का विधान है। उनके लिए रात की निम्न घड़ियाँ निर्दिष्ट हैं-

रवि : छः से साढ़े सात तक।

सोम : तीन से साढ़े चार तक।

मङ्गल : डेढ़ से तीन तक

बुध : बारह से डेढ़ तक।

गुरु : साढ़े दस से बारह तक।

शुक्र : नौ से साढ़े दस तक।

शनि : साढ़े सात से नौ तक।

पुत्र, धन, नए साधन, अच्छा वर अथवा वधू आदि सभी लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए रात की घड़ी श्रेष्ठ मानी गई है। चाहे पूजा दिन में हो या रात में, नव दुर्गाओं के शुभ नाम-स्मरण के बाद आठ वसु, नौ निधि, दश दिशाधिपति, एकादश रुद्र, बादश आदित्य इनके साथ अश्विनी देवताओं की भी उपासना करनी चाहिए।

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

आठ वसुओं के शुभ नाम हैं-**१ भव, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ विष्णु, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष और ८ प्रभव**

नौ निधियों के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग नौ ग्रहों के प्रीति-कारक नौ रत्नों की आराधना करते हैं। यथा-**सूर्य : माणिक्य। चन्द्रमा : मुक्ता। मङ्गल : प्रवाल। बुध : कौस्तुभ या हरा हीरा। गुरु : पुष्प-राग। शुक्र : वज्र शनि : नीलम। राहु : गोमेधक (गोमेद)। केतु : वैदूर्य**

अधिकांश साधक नौ मुद्राओं को ही नौ निधि के रूप में मानते हैं। यथा-**१ खड्ग, २ खेट, ३ चक्र, ४ गदा, ५ चाप, ६ बाण, ७ तर्जनी, ८ अनल और ६ योनि-मुद्रा।** इनमें 'योनि-मुद्रा' मुख्यतम है।

दिक्	अधिपति	शक्ति
प्राक् (पूर्व)	इंद्र	ऐन्द्री
आग्नेयी (दक्षिण-पूर्व)	अग्नि	स्वाहा या स्वधा
दक्षिण	वराह	वाराही
नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम)	निर्ऋति	चित्ता (खड्ग-हस्ता)
पश्चिम	वरुण	वारुणी
वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	वायु	मृग-वाहिनी
उदीची (उत्तर)	कुबेर	कौमारी
ऐशानी (उत्तर-पूर्व)	ईशान	शूलिनी
ऊर्ध्व दिक्	ब्रह्मा	ब्रह्माणी (सरस्वती)
अधो दिक्	विष्णु	वैष्णवी (लक्ष्मी)

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

.ऐशानी (उत्तर-पूर्व) दिशा में दुर्गा-माता की शूलिनी शक्ति विराजमान है, जो सर्वोपरि मानी गई है। इस शक्ति का उदय प्रतिदिन विभिन्न घड़ियों में होता है, वह इस प्रकार है-

वार	दिक्	घाटी(घड़ी)
रवि	पश्चिम या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
सोम	पूर्व या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः से नौ
मङ्गल	उत्तर या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
बुध	उत्तर या उत्तर-पूर्व	प्रातःछःसे मध्याह्न बारह
गुरु	दक्षिण या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः से मध्याह्न दो
शुक्र	पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः से साढ़े दस
शनि	पूर्व या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः से नौ

उपर्युक्त घड़ियों में उक्त दिशाओं में शूलिनी शक्ति का आवाहन करने से वाञ्छित फल मिलता है।

प्रसङ्ग-वशात् यहीं योगिनी माता का भी उल्लेख आवश्यक है। अग्न्यात्मक दुर्गा के 'नवार्ण-मन्त्र' की सिद्धि के लिए महा-गणपति, क्षेत्र-पाल, बटुक-भैरव तथा योगिनी माता का अनुग्रह प्राप्त करना अनिवार्य है। महा-गणपति, क्षेत्र-पाल एवं बटुक-भैरव के पूजा-विधान प्रसिद्ध हैं, परन्तु योगिनी माता

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

रहस्यमयी हैं। उनके सम्बन्ध में प्रकाश डालनेवाले ग्रन्थ भी कम हैं। यह ज्ञातव्य है कि किसी भी मन्त्र की सिद्धि के लिए अपने जन्म-नक्षत्र की देवता के अनुकूल तिथि, वार, योग और करण का शुभ मिलन होना चाहिए। वार के अनुसार २७ नक्षत्रों के २७ योग होते हैं। इनके अतिरिक्त १५ तिथियाँ और करण हैं। सूर्य और चन्द्र के बीच की जो दूरी है, उसी के अनुसार 'तिथि' बनती है और **चन्द्र की वृद्धि तथा क्षय के अनुसार 'योगिनी' की दिशा बनती है**। यथा-

शुक्ल पक्ष	दिक्	कृष्ण पक्ष	दिक्
प्रथमा(एकादशी)	प्राक् (पूर्व)	षष्ठी	प्राक् (पूर्व)
द्वितीया (दादशी)	उत्तर	सप्तमी	दक्षिण-पूर्व
तृतीया (त्रयोदशी)	दक्षिण-पूर्व	अष्टमी	दक्षिण
चतुर्थी (चतुर्दशी)	दक्षिण-पश्चिम	नवमी	दक्षिण-पश्चिम
पञ्चमी (पूर्णिमा)	दक्षिण	दशमी	पश्चिम
षष्ठी	पश्चिम	प्रथमा(एकादशी)	उत्तर-पश्चिम
सप्तमी	उत्तर-पश्चिम	द्वितीया (द्वादशी)	उत्तर
अष्टमी	उत्तर-पूर्व	तृतीया (त्रयोदशी)	उत्तर-पूर्व
नवमी	आकाश	चतुर्थी (चतुर्दशी)	आकाश.
दशमी	भूमि	पञ्चमी	भूमि

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

योगिनी माता के अनुग्रह से साधक यह जान सकते हैं कि **कृष्ण-पक्ष अष्टमी की 'वाराही'-शक्ति ही शुक्ल पक्ष की अष्टमी की 'शूलिनी'-शक्ति के रूप में अनुग्रह करती हैं।** अतः **कृष्ण-पक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक श्रीदुर्गा-सप्तशती का पारायण करना सिद्धि-प्रद होता है।**

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की नवमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक पारायण करने से 'खड्ग-धारिणी' माता के दर्शन मिलते हैं तथा साधक मृत्यु तक को जीत पाता है। उसे चिरञ्जीवी मार्कण्डेय महर्षि का सायुज्य।मिल जाता है क्योंकि माता के खड्ग में काल (मृत्यु) की शक्ति निहित है। 'सप्तशती' के अनुसार- **कालश्च दत्तवान् खड्गं, तस्याश्च चर्म निर्मलम्।**

दश दिशाओं में योगिनी की स्थिति जानने के बाद एकादश रुद्रों के शुभ नामों का स्मरण व पूजन होना चाहिए। एकादश रुद्र हैं—१ अज, २ एक-पात, ३ अहिर्बुध्न्य (ज्ञान-दाता के रूप में प्रसिद्ध), ४ विरूपाक्ष, ५ रैवत, ६ हर (शम्भु महा-देव के रूप में प्रसिद्ध), ७ बहु-रूप, ८ त्र्यम्बक (महाराष्ट्र के 'नासिक' क्षेत्र में प्रतिष्ठित), ९ सावित्र, १० जयन्त और ११ पिनाकी। प्रत्येक रुद्र का अलग-अलग पूजा-विधान होने पर भी माता की पूजा में ये सब अङ्ग-देवताओं के रूप में ही पूजे जाते हैं।

आदित्य १२ हैं। यथा-१ चैत्र मास में 'त्वष्टा' या 'वेदज्ञ', २ वैशाख में 'इन्द्राग्नि' या 'तपन', ३ ज्येष्ठ में 'इन्द्र', ४ आषाढ़ में 'विश्वेदेव' या 'मधु-रूपी सूर्य', ५ श्रावण में 'महा-विष्णु' या 'गर्भास्त', ६ भाद्र में 'यम', ७ आश्विन में 'हिरण्य-रेता', ८ कार्तिक में 'दिवाकर', ६ मार्गशीर्ष में 'मृगशिरा',

१० पौष में 'पूषा', ११ माघ में पितृ देवता 'अर्यमा अरुण', १२ फाल्गुन में 'भग सूर्य।

अब तक हमने ८ वसुओं, ६ निधियों, १० दिक्-पालों, ११ रुद्रों तथा १२ आदित्यों का वर्णन किया। इन सबका प्रकाश 'अश्विनी' द्वारा ही होता है। अश्व-मुखवाले दो देव सदा एक साथ घूमते रहते हैं। यही कारण है कि वेद में सर्व-व्यापी देवता के रूप में इनकी स्तुति की गई है-**'अश्विनौ व्यात्तम् इष्टं मनिषाण, अमुं मनिषाण, सर्व मनिषाण।** 'मनिषाण'-प्रार्थना का तात्पर्य है कि अमुक फल की प्राप्ति के लिए आप ही हमारे मार्ग-दर्शी बनें। दिन-रात, पुण्य-पाप, सूर्य-चन्द्र, प्रकाश और तम, ज्ञान व अज्ञान इस प्रकार मनुष्य की उच्च गति तथा अघो-गति दोनों के द्योतक के रूप में अश्विनी देवताओं को ज्योतिश्चक्र में स्थान मिला है। वह स्थान ध्रुव है, अव्यय है।

'गीता' में कहा गया है कि **'अक्षराणां अकारोऽस्मि'**। 'प्रणव' में अ-कार का अर्थ परमात्मा है, म-कार का जीवात्मा है। बीच में जो उ-कार है-वही अश्विनी है। अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा को जोड़नेवाले जुड़वा देवता हैं।

'अश्व' का अर्थ यह भी है कि 'श्व' अर्थात् कल का नहीं, आज का ही है। अर्थात् यह देवता आवाहन-मात्र से सन्तुष्ट होकर तुरन्त वर्तमान काल में ही फल प्रदान करता है। 'अश्व' का अर्थ घोड़ा भी है। शक्ति-मान के रूप में घोड़ा सर्वोच्च माना गया है; इसीलिए अश्व-शक्ति' (हॉर्स-पावर-शब्द) विद्युत्-शक्ति की माप के लिए प्रयुक्त होता है। 'महाभारत' का 'हय-शिर उपाख्यान' प्रसिद्ध है। हय-मुखवाले एक असुर ने ब्रह्मा से सभी वेदों और शास्त्रों का अपहरण कर लिया। उसे मारने के लिए ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की। विष्णु ने अश्विनी देवताओं द्वारा 'हय-ग्रीव' का स्वरूप धारण किया और उस असुर

का वध कर वेदों की रक्षा की तथा ब्रह्मा को उन्हें पुनः प्रदान किया। अश्विनी देवताओं का निवास ऊँचे पहाड़ों पर, घने जङ्गलों पर तथा युद्ध-क्षेत्रों में रहता है। अतः ज्योतिश्चक्र में अश्विनी-नक्षत्र के चारों चरण मेष-राशि में, सिंह-राशि में तथा धनु-राशि में निहित हैं। मेष-राशि इन देवताओं की चर-राशि है; सिंह-राशि- स्थिर-राशि है; धनु-राशि- उभय-राशि है। अतः धनु-राशि में मूल-नक्षत्र में इन देवताओं का आवाहन करने से साधक को शीघ्र ही मन्त्र-सिद्धि मिल जाती है।

'तन्त्र' का निर्देश है—**'मूलेन आवाहयेत् देवीम्।** अश्विनी देवताओं के स्थान का सप्तम स्थान ज्योतिश्चक्र में मनुष्यों का होता है; मेष-राशि का सप्तम स्थान तुला-राशि है; सिंह-राशि का सप्तम स्थान कुम्भ राशि है तथा धनु-राशि का सप्तम स्थान मिथुन राशि है। ये तीनों मनुष्य-राशियाँ हैं।

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्य उच्यते।

'प्रणव' का स्थान सर्वोपरि है। उसी प्रणव के द्योतक धनु-राशि में आत्मा-रूपी शर से ब्रह्म-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अश्विनी देवताओं की कृपा अनिवार्य है।

'मेष' का पर्याय-वाची 'अज' है। अश्विनी-देवता ही 'अजा' अर्थात् प्रकृति है। प्रकृति के तीन गुण हैं–१ रजस्, २ सत्त्व, ३ तमस्, जिनके रूप क्रमशः लोहित, शुक्ल और कृष्ण हैं इन तीनों रूपों को ही दिखा कर प्रकृति- पुरुष को अपने वश में कर लेती है।

अश्विनी की कृपा से प्रकृति- पुरुष के वश में आ जाती है। उसी को वश में लाने के लिए 'वाग्-भव', 'योनि' और 'काम-कला' को जानना आवश्यक है।

बीच में 'योनि' होती है। अतः 'योनि-मुद्रा' से ही देहली-दीप न्याय के अनुसार 'बाग-भव' तथा 'काम-कला' पर नियन्त्रण मिल सकता है। 'योनि-मुद्रा' के लिए दोनों हाथों, दोनों पैरों तथा दोनों गुह्याङ्गों का उपयोग किया जाता है। तभी मन के नियन्त्रण से वाक्-सिद्धि आदि मिलेगी।

सिंह-राशि में अश्विनी का स्थान होने से श्रीदुर्गा सिंह-वाहिनी के रूप में पूजी जाती हैं। यहीं **'प्राणाः यस्य तु मातरः पितृ-कुलं यस्याऽस्त्यपानात्मकम्'** का ध्यान होता है। अतः सिंह-राशिस्थ **'अश्विनी'-देवता** का अनुग्रह प्राप्त होने पर सिंह-राशि के सप्तम स्थान पर कुम्भ राशि में गुरु का साक्षात्कार मिल जाता है।

किसी भी पूजा के लिए 'कलश-स्थापन' आवश्यक है। कलश के मुख में विष्णु, कण्ठ में अजा, रुद्र तथा मूल में ब्रह्मा का और मध्य-स्थान में मातृ-गणों का आवाहन किया जाता है। कुम्भ राशि के गुरु के ध्यान से सहस्रार-स्थित चन्द्रमा के रस अर्थात् अमृत का पान साधक करने लगता है। मार्कण्डेय महर्षि की प्रार्थना—'**मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्**'–सफल हो जाती है। अतः कुम्भ -राशि-स्थित गुरु के अनुग्रह से ही साधक को मन्त्र-सिद्धि मिलती है। **ब्रह्मा-रूप गुरु के ध्यान से 'महा-काली' का, विष्णु-रूप गुरु के ध्यान से 'महा-लक्ष्मी' का और रुद्र-रूप गुरु के ध्यान से 'महा-सरस्वती' का अनुग्रह मिलता है।** इन तीनों शक्तियों का एक-साथ अनुग्रह प्राप्त करने के लिए अश्विनी देवताओं की कृपा अनिवार्य है।

वेदों में अश्विनी के कई रूप वर्णित हैं, परन्तु साधक के लिए एक ही रूप पर्याप्त है। वह है- जगदम्बा का स्वरूप। अन्य रूपों के ध्यान से साधक को मन्त्र-सिद्धि मिलना तो दूर, उसकी अधो-गति अवश्य होती है। अतः अश्विनी

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

देवताओं के कई रूप होने पर भी जगदम्बा-स्वरूप ही हमारा रक्षक है।

अश्विनी में सृष्टि करने की 'चर-शक्ति' मेष-राशि में है, अतः वह लोहित-शुक्ल -कृष्ण-रूपा है। स्थिति करने की स्थिर-शक्ति' सिंह-राशि में है, अतः वह सिंह -वाहिनी व चक्र-धारिणी है। संहार करने और पुनः सृष्टि करने की 'उभय शक्ति' धनु-राशि में है, अतः वह वाराही एवं खड्ग-धारिणी है। ये ही अश्विनी के तीन जगदम्बा-स्वरूप हैं।

'चामुण्डा' का खड्ग-हस्ता के रूप में ध्यान करना विहित है, परन्तु खड्ग-हस्ता के प्रथम स्वरूप 'धाराही' के ध्यान के बिना चामुण्डा का ध्यान फल-प्रद नहीं होता। अतः 'वाराही'-यन्त्र में उनका पूजन करना आवश्यक है। पूजन के अन्त में-

गुह्याति-गुह्य-गोत्री त्वं, गृहाणास्मत्-कृतं जपम्।

सिद्धिर्भवतु वाराहि! त्वत्-प्रसादान् महेश्वरि।'

उक्त श्लोक-पाठ के साथ देवी के चरण-कमलों में 'तीर्थ' समर्पित करें तथा उस 'तीर्थ' का अपने एवं अन्य भक्त-जनों के शिरों पर प्रोक्षण करें। इससे देव -ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण से मुक्ति मिलती है। 'भगवद्-गीता' के १५वें 'पुरुषोत्तम' नामक अध्याय में अश्विनी देवता की प्रशंसा की गई है। 'महाभारत' में 'नकुल' और 'सहदेव'- अश्विनी देवता के ही अंश हैं। योग-प्रक्रिया से विचार करें, तो भी अश्विनी का स्थान बड़ा ऊँचा है। जो मन के द्वारा ध्यान किया जाता है, वही वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। अतः मन और वाक्-इनके प्रवर्तक 'अश्विनी' है। कार्य करने में दोनों हाथों, दोनों पैरों, उदर और लिङ्ग का साथ-साथ उपयोग होता है। वहाँ भी अश्विनी देवता का

अनुग्रह अनिवार्य है। अश्विनी देवता 'ज्वाला-मालिनी' हैं। अतएव सत्य-स्वरूपा हैं। आकाश और पृथ्वी, ऋत् और सत्य, वायु और अग्नि, सूर्य और सत्य।

योग-प्रक्रिया में यम, नियम और आसन के बाद प्राणायाम का स्थान है। अश्विनी देवता का सम्बन्ध हृदयस्थ नाड़ियों से है। कुम्भक प्राणायाम द्वारा ही हृदयस्थ नाड़ियों का चालन किया जा सकता है। हृदय-स्थान में एक सौ नाड़ियाँ स्थित हैं। उनमें एक ही नाड़ी परमात्मा का सम्बन्ध दिला सकती है। उसी नाड़ी का चालन अश्विनी देवता के अनुग्रह से होता है तथा ऊर्ध्व-केशी चामुण्डा माता का अनुग्रह भी प्राप्त होता है। अश्विनी देवता के साक्षात्कार के लिए प्राणायाम सदैव करते रहना चाहिए। सूर्य और चन्द्र की गति को रोकने से ही ज्ञानानन्द-मय अश्विनी देवता का उदय सुषुम्ना नाड़ी में होता है। तब जगन्माता की कृपा से साधक तीनों कालों का ज्ञानी हो जाता है। कहा भी है-

नव-दुर्गा महा-काली, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिकाम्।

त्रिकाल-ज्ञान-सम्पन्नां, नमामि भुवनेश्वरीम्॥

यह तो सभी साधक जानते हैं कि 'शक्ति' के अनुग्रह के विना 'शिव' का चालन नहीं होता। परन्तु यही प्रश्न है कि वह 'शक्ति' है कहाँ? उसका चालन कैसे किया जाए? इस प्रश्न का समाधान भी अश्विनी द्वारा ही मिल जाता है। 'श्वा' का अर्थ है कुत्ता। हम देखते हैं कि कुत्ता एक जगह से दूसरी जगह यों ही दौड़ेगा, फिर थक जाने पर उसी जगह वापस आ जाएगा। यही उसकी मूल प्रवृत्ति है। इसी प्रकार जो साधक अपक्क है, वह भी **'श्वा'** की तरह **'पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्'** के मार्ग में दौड़ता रहता है। अश्विनी देवता

की कृपा मिल जाने पर वह **श्वा-प्रवृत्ति** समाप्त होने लगती है; मन अपने अन्दर देखने लगता है; परमात्मा के जानने के लिए इच्छुक हो जाता है; अपने को **'म-कार'** के रूप में अर्थात् इस विशाल ज्ञान-सागर में एक विन्दु की तरह समझने लगता है। तभी **'मु'**-स्वरूपा स्कन्द-माता के दर्शन के लिए वह अन्तर्मुखी बन जाता है। अश्विनी स्वयं ज्ञान-रूपा है; अतः साधक को यथार्थ ज्ञान देती है। दश महा-विद्याओं का ज्ञान भी मिल जाता है। दश महा-विद्याओं के नाम हैं-

काली तारा षोडशी च, भुवनी भैरवी तथा।

छिन्नमस्ता च धूम्रा च, बगला गजिनी कलीम्॥

'गजिनी'- 'मातङ्गी'-नाम से और **'कलीम'-** 'कमला'-नाम से प्रसिद्ध हैं।

स्वधा-प्रवृत्तिवाली **'श्वा''-**बुद्धि के नियन्त्रण से स्वाहा-प्रवृत्तिवाली 'अश्विनी'-देवता का अनुग्रह मिल जाता है। जहाँ भी, जो भी आहार मिलता है, उसे कुत्ता खा लेता है, जो कोई नया सामने आता है, उसे देखते ही पूँकने लगता है; अपनी रक्षा के लिए दूसरों को काटने के लिए दौड़ता है ये तीनों वातें **'श्वा' -**प्रवृत्तियाँ हैं। इनसे छुटकारा पाने के लिए **'अश्व-मुखी'** अश्विनी का अनुग्रह अनिवार्य है।

अपनी जीभ पर नियन्त्रण रखना सर्व-प्रथम कर्तव्य है। जो भी आहार जगदम्बा की सेवा में समर्पित हो, उसी को **'प्रसाद'** के रूप में स्वीकारना चाहिए। जो मन्त्र गुरु-मुख से प्राप्त हो, उसी का जप करना चाहिए। साधक-मण्डली को छोड़कर अन्यों की बैठक में शामिल नहीं होना चाहिए। अपने मन और वाणी पर नियन्त्रण रखना साधक के लिए अत्यावश्यक है। जगदम्बा की

तुष्टि के लिए सब कुछ बलिदान करने की प्रवृत्ति भी आवश्यक है।

'देवी-सूक्त' में जगदम्बा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है, परन्तु उस स्वरूप का प्रकाश तथा विमर्श अश्विनी की कृपा से ही मिल सकेगा। अतएव चामुण्डा का ध्यान भी निम्न श्लोक से ही करना श्रेयः-प्रद है-

ऊर्ध्व - केशि विरूपाक्षि, मधु-शोणित-भक्षिणि!

तिष्ट देवि! शिखा-मध्ये, चामुण्डे! ह्यपराजिते॥

'ऊर्ध्व-केशि'-शब्द से **'अश्विनी'** द्वारा साधक की सृष्टि एवं संहार की प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है। यदि ये दोनों प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्व-मुखी हों, तो स्थिति की प्रवृत्ति भी अपने आप ऊर्ध्व-मुखी हो जाती है, एतदर्थ **'श्वा'**-प्रवृत्ति का नियन्त्रण हो तथा अश्व-प्रवृत्ति का विकास हो, यह आवश्यक है।

उपनिषदों में भोक्ता के रूप में अश्विनी देवता का ही चित्रण किया गया है-

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च॥

इन्द्रियाणि हयान् आहुः, विषयांस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रिय-मनो-युक्तं, भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय, मन आदि से युक्त जो बुद्धि-तत्त्व या ज्ञान-तत्त्व अर्थात् 'अश्व-मुखी'-प्रवृत्ति है, वही अश्विनी- भोक्ता है। शरीर तो जड़ है, इसलिए वह भोक्ता नहीं हो सकता। शरीर के अन्दर जो जीवात्मा है; उसके द्वारा परमात्मा ही सभी काम करा लेता है। अतः कर्म करते रहना ही

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

जीवात्मा का स्वरूप है—वहीं 'सुरथ' है। जीवात्मा द्वारा कर्म कराते-कराते उसे 'समाधि' पर पहुँचाना परमात्मा का ध्येय है—यही उसकी लीला है। एतदर्थ सङ्कोच-विकास, ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अन्धकार आदि दो-दो प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का जीता-जागता स्वरूप 'अश्विनी' है।

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का निम्न श्लोक सभी भक्तों को ऐश्वर्य देनेवाला है-

शूलेन पाहि नो देवि! पाहि खड्नेन चाम्बिके!

घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या-निःस्वनेन च॥

उक्त श्लोक के आधार पर स्थिर-योगिनी के सम्बन्ध में अश्विनी-देवताओं की कृपा के फल-स्वरूप अव विचार किया जाएगा।

जगदम्बा चामुण्डा की चार मुख्य अङ्ग-देवता प्रसिद्ध हैं-**१ महागणपति, २ क्षेत्र -पाल, ३ बटुक भैरव और ४ योगिनी।** इन चारों का अनुग्रह प्राप्त होने पर ही चामुण्डा का प्रसाद मिल सकता है। महा-गण-पति, क्षेत्रपाल और. बटुक-भैरव के मन्त्र और तन्त्र प्रसिद्ध हैं, परन्तु योगिनी के बारे में गुरु-शिष्य-परम्परा के रूप में कुछ रहस्य हैं, जिन्हें पाठकों के हितार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

शाक्तों के लिए अपने-अपने विशेष पञ्चाङ्ग हैं। चामुण्डा देवी के चार ही अङ्ग हैं। पञ्चाङ्ग का मतलब है-**१ तिथि, २ वार, ३ नक्षत्र, ४ योग और ५ करण।** चार अङ्गों का मतलब है–**१ दिक्, २ तिथि, ३ दिन और ४ शूल।** ये ही चार अङ्ग निम्न तालिका में दिए गए

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

स्थिर योगिनी माता

दिन	दिक्	शुक्ल पक्ष	कृष्ण पक्ष
सोम-शनि	प्राची	१-११	६
मङ्गल-बुध	उत्तर	२-१२	७
गुरु-शनि	आग्नेय	३-१३	८
शुक्र-सोम	नैऋत्य	४-१४	९
गुरु	दक्षिण	५-१५	१०
शुक्र-रवि.	पश्चिम	६	१-११
मङ्गल-रवि	वायव्य	७	२-१२
---	आकाश	९	४-१४
---	पृथ्वी	१०	५-१५
बुध	ईशान	८	३-१३

(१) चौथा अङ्ग 'शूल' है, जो योगिनी माता का बोधक है। दशों दिशाओं में योगिनी माता पूजनीया हैं।

(२) दिन एवं तिथि का सम्मिलन ही मुख्य है। तदनुसार उक्त दिशा में योगिनी-

माता की पूजा करे।

(३) मोक्षार्थी साधक या अन्यों के हित में पाठ करनेवाला शुक्ल पक्ष की नवमी एवं कृष्ण पक्ष की चतुर्थी व चतुर्दशी में सप्तशती का पारायण करे।

(४) भोगेच्छु साधक शुक्ल पक्ष की दशमी और कृष्ण पक्ष की पञ्चमी और अमावास्या के दिन पारायण करे।

उक्त चार अङ्गों का मिलन होने पर 'स्थिर-योगिनी' की कृपा से दुर्गा माता की असीम कृपा मिल जाती है। इन चारों का मिलन कभी-कभी ही होता है। अतः साधक को चाहिए कि शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी और अमावास्या में नियमित रूप से मन और कार्य की स्थिरता के साथ ऊँचे स्वर में 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का 'पारायण' किया करें।

साधक के शरीर में नौ ग्रहों की स्थिति इस प्रकार होती है- **गुरु-ग्रह कण्ठ-भाग के ऊपर, मङ्गल और छाया-ग्रह केतु कटि के नीचे, शनि और राह पृष्ठ-भागों पर, सोम और बुध शिरो-भाग पर, शुक्र मुख-मण्डल पर एवं सूर्य दोनों हाथों पर स्थित माने गए हैं।** इसी प्रकार शरीर पर नौ ग्रहों का न्यास करने से साधक इन ग्रहों के कु-प्रभाव से बच जाता है। तव नव-ग्रहों के न्यास के बाद अश्विनी-देवताओं का न्यास अपने कानों पर करना चाहिए। इस न्यास के फल-स्वरूप शनि और राहु तुष्ट हो जाते हैं तथा पितरों, ऋषियों और देवों का अनुग्रह मिल जाता है।

अक्षांश पर ग्रहों का न्यास करना चाहिए। 'अक्षांश' को ठीक करने के लिए अपने शरीर, शिर और कण्ट-इन तीनों भागों को स्थिर रखना होता है। नवार्ण मन्त्र में और अन्य मन्त्रों में 'अक्षांश' ही मान-दण्ड है। जब तक अश्विनी

देवताओं की कृपा नहीं मिलती, तब तक दोनों हाथों, दोनों पैरों, दोनों कानों एवं पृष्ठ-भाग और शिरो-भाग को एक साथ सम रखना कठिन होता है। वात, पित्त और कफ-इन तीनों नाड़ियों को, वाक्, काय और मन-इन तीनों करणों

को, पृष्ठ-भाग, शिरो-भाग, कण्ठ-भाग-इन तीनों भागों को समान रूप से चलाने का अभ्यास करना नवार्ण मन्त्र के साधक के लिए आवश्यक है।

सतत अभ्यास से जव ये तीनों वश में आ जाते हैं, तब वागीश्वरी अथवा महा-काली-बीज का शिखा में, भुवनेश्वरी अथवा माया-वीज का पृष्ठ-भाग पर, कामेश्वरी अथवा महा-सरस्वती-बीज का नाभि पर ध्यान करना सुलभ हो जाता है। इस प्रकार अभ्यास न हो, तो साधक 'गन्ध-वही गर्दमः' वन जाता है अर्थात् अज्ञानी गधा बन जाता है।

'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का प्रत्येक अक्षर आग के कण के समान है। अतः कोई भी साधक यदि उसके एक भी अक्षर का अर्थ हृदयङ्गम कर ले, तो उस साधक के सभी पाप तत्क्षण दूर हो जाएँ। मार्कण्डेय महर्षि ने कठिन तपस्या के बाद तीनों बीज-मन्त्रों का न्यास और अनुष्ठान जाना था। इसी से ऋषि अर्थात् मन्त्र-द्रष्टा के रूप में वे माननीय हैं।

ब्रह्मा की वहन दुर्गा, विष्णु की बहन पार्वती तथा रुद्र की वहन सरस्वती हैं। नवार्ण मन्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने महा-काली की, विष्णु ने महा-लक्ष्मी की एवं रुद्र ने महा-सरस्वती की उपासना की है। ये ही उन त्रि-देवों की अनन्य शक्तियाँ हैं। अतएव नवार्ण मन्त्र के सभी अक्षरों से व्यापक न्यास करना आवश्यक है।

जैसे रश्मि का सूर्य से अलग अस्तित्व नहीं है, वैसे ही नवार्ण मन्त्र का

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

अस्तित्व मेरु-दण्ड से शिखा तक व्याप्त है। मन्त्र के सभी अक्षर अग्नि-स्वरूप हैं। ध्यान भी अनलात्मिका, त्रि-नेत्रा दुर्गा का ही किया जाता है। पहले वीज-मन्त्र का ठीक तरह से उच्चारण कण्ठ, तालु और शिखा से करना चाहिए। दूसरे बीज-मन्त्र का उच्चारण पृष्ठ-भाग से लेकर दाहिनी आँख से करना चाहिए। तीसरे बीज-मन्त्र का उच्चारण नाभि से लेकर वाँई आँख से करना चाहिए। तत्पश्चात् अश्विनी देवताओं का अनुग्रह मिलेगा। तभी कूष्माण्डा, स्कन्द-माता, कात्यायनी और काल-रात्रि का अनुग्रह भी मिलेगा। तदनन्तर महा-गौरी का अनुग्रह मिलेगा, तभी सिद्धि मिलती है।

नवार्ण-मन्त्र का जप, होम, अनुष्ठान आदि गुरु के निर्देशन में ही करना चाहिए। केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर किसी भी मन्त्र की सिद्धि करने का प्रयत्न न करे। पुस्तक तो विधि-विधान और उसके महत्त्व को जानने का एक साधन-मात्र है। साध्य देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए गुरु की शरण लेनी अति आवश्यक है। नवार्ण मन्त्र के लिए भी यह नियम अनिवार्य है। नवार्ण मन्त्र की सभी अङ्ग-देवता रौद्रांश की हैं। अतः खेल समझ कर जो कोई साधक गुरु-कृपा प्राप्त किए विना इन देवताओं का ध्यान करता है, उसे वे उग्र शक्तियाँ शाप दे देती हैं।

दक्षिण में नवार्ण मन्त्र की सभी अङ्ग-देवताओं को कन्याओं के रूप में मानते हैं। दक्षिण भारत के अन्तिम छोर पर स्थित 'कन्या-कुमारी देवी' का ध्यान-मात्र साधक अपनी आराध्य देवता के रूप में किया करता है।

उत्तर-भारत में चामुण्डा देवता का निम्न गायत्री मन्त्र प्रसिद्ध है- 'रुद्र-भूताय विद्महे खड्ग-हस्तायै धीमहि। तन्नः चामुण्डा प्रचोदयात्।'

किन्तु दक्षिण भारत में बहु प्रचलित गायत्री मन्त्र है-

'कात्यायनाय विद्महे, कन्या-कुमारि धीमहि, तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्।'

कुमारी के रूप में दुर्गा की उपासना करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं। अभीष्ट फल भी मिल जाता है।

नेपाल का राज-परिवार चामुण्डा का परम भक्त है। नवरात्र के दिनों में कन्याओं की ही पूजा करता है। एतदर्थ कन्याओं के लिए एक विशेष निवास-स्थान भी राजधानी काठमाण्डू में राज-परिवार द्वारा सुरक्षित है। दुर्गा देवी के कई रूप सर्वत्र व्याप्त हैं। सिद्ध पुरुष 'जगदम्बा' के रूप में दुर्गा की उपासना करते हैं। साधकों को कुमारी के रूप में उपासना करना।श्रेयस्कर है।

सभी नारियों को दुर्गा के अवतार के रूप में ही मानना चाहिए। रावण ने सीता को अपनाना चाहा, उसका सत्यानाश हो गया। दुर्योधन ने द्रौपदी की अवज्ञा की, उसका समूल विनाश हो गया। अतः साधक का पहला अभ्यास यही होना चाहिए कि सभी नारियों को दुर्गा माता के रूप में माने। उनकी पूजा करे या न करे, परन्तु उनकी अवज्ञा कदापि न करे। किसी भी परायी स्त्री को अपनाने का प्रयत्न कभी न करे। नारी-जगत् को दुर्गा के रूप में मानने की बात पर हम इसीलिए जोर देते हैं कि कुछ लोग 'मकार-पञ्चक' और 'दुर्गा-पूजा' के नाम पर शाक्त-समुदाय को बदनाम करने पर तुले रहे हैं। अतः हमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

'नवार्ण मन्त्र' की शक्ति का विकास उसी दिन से प्रारम्भ हुआ, जब प्रलय-काल में आदि-पुरुष नारायण वट-पत्र पर शिशु के रूप में सोए हुए थे। 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' का आदि चरित भी सोए हुए विष्णु को जगाने के लिए ही

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

जपा जाता है। यह भी देखें कि ब्रह्मा का बीजाक्षर एक है, उनकी शक्ति का बीजाक्षर दूसरा है। रुद्र का वीजाक्षर एक है तथा उनकी शक्ति का बीजाक्षर दूसरा है, परन्तु विष्णु तथा उनक शक्ति का बीजाक्षर दोनों एक ही हैं। अतःवैष्णवी दुर्गा माता की अवहेलना करने पर नाश ही हो जाता है।

अब हम दक्षिणाम्नाय की **'दुर्गा-पूजा-पद्धति'** पर और प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। इस पद्धति में अद्वैत-वाद का स्फुरण भी है। आचार्य, मन्त्र और देवता अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय-इन तीनों का एकी-भाव अथवा अद्वैत हो जाता है। यही मन्त्र-सिद्धि है। **'आचार्यादिह देवतां समधिकां अन्यां न मन्यामहे'**—यही सिद्धान्त दक्षिणाम्नाय का है। गुरु से ही मन्त्र, मन्त्र से ही देवता इस क्रम से गुरु को प्रथम स्थान मिल जाता है।

चामुण्डा के मन्त्र में यही बात है। ऋषि, छन्दस् और देवता का समन्वय हो जाने पर ही सिद्धि मिल सकती है। निरीश्वर सांख्य-मत के अनुसार भी प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था ही मोक्ष है।

सेश्वर शाक्त-मत में गुरु, गुरु की शक्ति और मन्त्र की शक्ति देवता इन तीनों की साम्यावस्था ही मोक्ष है, सर्व-सिद्धि है और सब कुछ है।

नवार्ण मन्त्र में प्रणव की बात हमने पहले कही थी। चामुण्डा के तीनों वीजाक्षर प्रणव के विकसित रूप ही हैं। इनके स्थान पर प्रणव का उच्चारण कर चामुण्डा का षडक्षरी मन्त्र **(ॐ चामुण्डायै विच्चे)** बनता है, जो सद्यः फलप्रद माना गया है। चामुण्डा के दोनों पार्यों पर 'नाग-राज' की स्थिति मानी गई है। 'नाग-राज' के जागरण के लिए षडक्षरी मन्त्र का ही प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

श्रीदुर्गा-पूजा की विशिष्ट विधियाँ

चामुण्डा की 'शिवा' के रूप में पूजा करने की पद्धति है। उस रूप में चामुण्डा के चार ही हाथ हैं, जिनमें क्रमशः पाश, अंकुश, वर तथा अभय-मुद्रा हैं।

कुमारी के रूप में चामुण्डा की पूजा करने की पद्धति में केवल एकाक्षरी का प्रयोग किया जाता है। साधक को स्कन्द-माता कुमारी के एकाक्षरी मन्त्र से भी अभीष्ट फल मिल जाता है।

दक्षिण के कुछ शाक्त-पीठों में यह भी देखा गया है कि नवार्ण मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के उच्चारण के साथ १००८ बार विभिन्न द्रव्यों से होम किया जाता है। ऐसे होमों से साधक के कई कष्ट दूर हो जाते हैं। दुर्गा का मन्त्र दुर्गम तो है ही, लेकिन साधक के मन के अनुसार दुर्गा के कई रूप माने गए हैं। उनमें बाला का स्वरूप भी एक है। माता, कुमारी- इन दोनों के मन्त्रों से बाला दुर्गा का मन्त्र कई साधक जपते रहते हैं, क्योंकि उस मन्त्र में केवल दो ही वीजाक्षरों का प्रयोग होता है तथा उन दोनों बीजाक्षरों से साधक की कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण तुरन्त हो जाता है। दशाक्षरी मन्त्र का जप भी दक्षिण के कई साधक करते रहते हैं। उनका मानना है कि दुर्गा के दस मुख हैं और दस पाद भी हैं। उन लोगों का कहना है कि नवार्ण भी दशाक्षरी से ही निकले हैं।

कई प्रसिद्ध शाक्तों ने यह मान भी लिया है कि नवार्ण मन्त्र जपने के पहले दशाक्षरी का कुम-से-कम एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। उन लोगों का अनुभव है कि दशाक्षरी के प्रथम पाँच अक्षरों से सभी कर्मेन्द्रियों का दमन हो जाता है तथा द्वितीय पाँच अक्षरों से ज्ञानेन्द्रियों का विकास हो जाता है। दशाक्षरी के जपने पर इसलिए जोर दिया जाता है कि साधक को अपने स्वरूप की पहचान के लिए ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-प्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि-इन तीनों ग्रन्थियों से अपने को विमुक्त करना चाहिए। ब्रह्मा ग्रन्थि-मुक्ति से सभी

प्रस्तोता: आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

इच्छाओं पर विजय मिलती है। विष्णु-प्रन्थि-विमुक्ति से पारिवारिक सङ्कटों से रक्षा होती है तथा रुद्र-ग्रन्थि की विमुक्ति से अज्ञान नष्ट होता है। इन तीनों ग्रन्थियों से एकदम मुक्ति पाने के लिए दशाक्षरी मन्त्र ही सिद्ध मन्त्र है। उस मन्त्र की सिद्धि के बाद नवार्ण मन्त्र की सिद्धि सुलभ हो जाती है।

यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि नवार्ण तथा दशाक्षरी में रुद्र का स्थान निश्चित है। चाहे विष्णु का मन्त्र हो, या ब्रह्मा का, या अन्य किसी देवी-देवता का, सबमें रुद्र को ही एक निश्चित स्थान दिया जाता है। रौद्रांश में, जैसा कि कुछ साधकों को भ्रम है, कोई भयङ्कर रूप नहीं है। उसमें अज्ञान-नाशक ज्ञान-सत्ता का स्फुरण मात्र है। उस ज्ञान-सत्ता के स्फुरण से ही आनन्द मिलता है। परमात्मा स्वयं ज्ञानानन्द-स्वरूप है। अतः जीवांश भी ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिए तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र आदि की खोज में जमीन-आसमान एक करने लगता है। यदि किसी गुरु की असीम कृपा से दशाक्षरी मन्त्र का उपदेश मिले, तो जीव का ज्ञान विकसित होता है। वह असीम आनन्द प्राप्त करता है तथा **आस्य-पाद-दशका जगन्माता चामुण्डेश्वरी का अनुग्रह भी प्राप्त कर लेता है।** जो साधक योगिनी-माता का अनुग्रह पाता है, उसे इन्द्रिय-निग्रह अपने आप हो जाता है। उसके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। योगिनी-माता दशों दिशाओं में व्याप्त हैं। योगिनी-माता के स्थिर होने पर ही साधक की इच्छा-शक्ति विकसित होती है। वही विकास अश्विनी देवताओं का स्वरूप है।

'महा-भारत' में जब श्रीकृष्ण ने कौरवों के साथ युद्ध करने के सम्बन्ध में पाण्डवों का अभिप्राय जानना चाहा, तो नकुल-सहदेव ने, जो अश्विनी के पुत्र थे, स्पष्ट कहा था कि 'कौरवों के विनाश के लिए आपका अवतार हुआ है,

अतः हमसे सलाह लेने का यह अभिनय हमें पसन्द नहीं है।'

अब हम अश्विनी देवता के 'अक्ष-स्वरूप' की ओर ध्यान देंगे। मनुष्य का मन हमेशा चञ्चल रहता है। मन को स्थिर रखने के लिए रीढ़ की हड्डी को ठीक तरह से सीधा रखकर 'पद्मासन' जमाना ही 'अक्ष-स्वरूप' है। इससे मन एकाग्र होने लगता है। अक्षांश पर घूमनेवाले ग्रहों का ज्ञान रखना आवश्यक है। नौ ग्रहों में राहु और केतु छाया-ग्रह हैं। शनि का छाया-ग्रह- 'राहु' है तथा मङ्गल का 'केतु'। अतः शनि और मङ्गल का स्वभाव जानना पर्याप्त है। सूर्य की उष्णता सबको वांछनीय है। जो सूर्य श्रीरङ्गम् में दिखाई देता है, वही प्रयाग में और नई दिल्ली में प्रकाशमान रहता है। सूर्य के उदय और अस्त की घड़ी में अन्तर हो सकता है, परन्तु उसका प्रभाव सर्वत्र रहता है।

नवार्ण मन्त्र में विष्णु ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा मुवनेश्वरी बीज के सतत ध्यान से सूर्य के कु-प्रभाव से हमें मुक्ति मिल जाती है। चन्द्र को मन का अधिनायक मानते हैं-**'चान्द्र-बलं तु निखिल-ग्रह-वीर्य-बीजम्।'** अर्थात् सभी ग्रहों को वीर्य देनेवाला चन्द्रमा है। **रुद्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं काम-बीज के ध्यान से जगदम्बा के भक्त चन्द्रमा के कु-प्रभाव से विमुक्त हो जाते हैं।** मङ्गल का प्रभाव नाड़ियों पर होता है। कुछ लोग कुत्ते की तरह इधर-उधर भटकते रहते हैं, उनका मन कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता। **'भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ताः'**- भोग-लालसा में सब कुछ खो बैठते हैं, परन्तु ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द तथा बागीश्वरी बीज के ध्यान से जगदम्बा के भक्त मङ्गल तथा छाया-ग्रह 'केतु' का कु-प्रभाव दूर कर लेते हैं।

अब रहा 'सौम्य' अर्थात् बुध। बुध- सोम का पुत्र है। कुछ लोगों की बुद्धि-शक्ति हमेशा मन्द रहती है। गणित और विज्ञान आदि गहन विषयों को समझ

नहीं पाते। **'काम-बीज'** पर निरन्तर ध्यान रखनेवाले साधकों की बुद्धि-शक्ति सदा तीक्ष्ण रहेगी। राहु के कु-प्रभावों से बचने के लिए **'विच्चे'** का सार्थक ध्यान करते रहना चाहिए।

इस प्रकार नवार्ण मन्त्र- नौ ग्रहों के कु-प्रभाव से बचने के लिए सिद्ध मन्त्र है।

.